वेदोऽखिलोधर्ममूलम्

ऋग्वेद
यजुर्वेद
सामवेद
अथर्ववेद

वैद प्रकाश

मासिक पत्र (6-7 प्रतिमाह) मूल्यः ५ रुपये सितम्बर २०१४

कुल पृष्ठ संख्या २०, वजनः 40 ग्राम
प्रकाशन तिथिः 4 सितम्बर 2014

अन्तःपथ

पूज्य पं. गंगाप्रसाद उपाध्याय जी की दार्शनिक देन (प्रा. राजेन्द्र 'जिज्ञासु')	३ से ११
श्रद्धेय आचार्य उदयवीर शास्त्री जी का पाण्डित्य स्वामी वेदानन्द जी की दृष्टि में। (प्रो. राजेन्द्र 'जिज्ञासु')	११ से १३
महर्षि दयानन्द और आर्य समाज का हिन्दी के प्रचार-प्रसार में योगदान (मनमोहन कुमार आर्य)	१३ से १८

सत्य

हर स्थिति के तीन दृष्टिकोण होते हैं। मेरा, आपका और सत्य का। सच्ची सफलता उसको मिलती है, जो तीसरे के अनुकूल होता है। सत्य को अपनाएँ

-स्वामी विवेकानन्द जी परिव्राजक

बोधकथा

शत्रु से प्रेम

एक पिता के तीन पुत्र थे। जब वे बड़े हुए, तो उसने अपने तीनों पुत्रों से कहा–"मेरे पास एक अति सुन्दर और कीमती अँगूठी है; यह अँगूठी उस लड़के को मिलेगी जो सात दिन के भीतर नेकी का काम करेगा।" यह सुनकर वे तीनों ही अँगूठी पाने की लालसा में अपने घर से निकल पड़े।

सात दिन के उपरान्त तीनों बेटों ने अपनी-अपनी नेकी सुनानी आरम्भ की। एक बेटा बोला, "पूजनीय पिताजी! जब मैं घर से बाहर निकला, तो मैंने सामने से एक ऐसे पुरुष को आते देखा। जिसे मुझसे सौ रुपये चाहिए थे। मैंने बिना माँगे उसे रुपए दे दिये।" यह सुन पिता ने कहा, "यह तो तुम्हारा धर्म था; तुमने उसके साथ कोई नेकी नहीं की।" दूसरा बोला–"दयालु पिताजी! मैं जंगल जा रहा था। वहाँ एक तालाब मैं मैंने एक आदमी को गोते खाते देखा। मैं उसे तालाब से निकालने में यदि कुछ भी विलम्ब करता तो वह डूब जाता। पिताजी! मै झट कपड़ों सहित पानी में कूद गया और उसको सुरक्षित बाहर निकाल लाया।"

पिता जी ने कहा, "यह भी तुम्हारा धर्म था। यदि तुम ऐसा नहीं करते तो पापी होते।"

अब सबसे छोटे की बारी आई। वह बोला–"हे धर्मात्मा पिता! यहाँ से चलकर मैं पहाड़ी पर पहुँचा। वहाँ पर मैंने देखा कि मेरा एक शत्रु एक ढलवाँ चट्टान पर गहरी नीद में सो रहा है। मैं चाहता तो उसको चट्टान से नीचे गिरा देता। वह ख़न्दक में गिरता और उसकी हड्डियों का भी पता नहीं चलता। यदि उसे मैं न भी गिराता, तो भी करवट लेने पर वह उस गहरी ख़न्दक में गिर पड़ता। मैंने उसको जगाकर सचेत कर दिया और उसे मरने से बचा लिया।" इतना सुनते ही पिता ने वह अँगूठी उसको दे दी और कहने लगे, "सच्ची नेकी तुमने की है–तुमने शत्रु पर दया दर्शाई है। तुम उसको मार डालते या मरने देते तो तुम अपराधी नहीं थे, क्योंकि वह तुम्हारा शत्रु था, पर तुमने ऐसा नहीं किया! तुम धन्य हो। आओ, मैं तुम्हारा मुखड़ा चूमूँ।"

फल–*अपने शत्रु से भी प्रेम करो। यह वैदिक शिक्षा है।*

वेदप्रकाश

संस्थापक : **स्वर्गीय श्री गोविन्दराम हासानन्द**

वर्ष ६४ अंक ०२ वार्षिक मूल्य : तीस रुपये, एक प्रति ५ रुपये, सितम्बर, २०१४

सम्पा॰ **अजयकुमार** पूर्व सम्पादक : स्व॰ **स्वामी जगदीश्वरानन्द सरस्वती**

ओ३म्

पूज्य पं० गंगाप्रसाद उपाध्याय जी की दार्शनिक देन

लेखक–राजेन्द्र 'जिज्ञासु'

वेद सदन, अबोहर-१५२११६

आर्य जन व दर्शन प्रेमी जिस दिन की वाट जोह रहे थे, वह अब बहुत दूरी नहीं। डॉ० रूपचन्द्र जी दीपक द्वारा अनुदित उपाध्याय जी का ग्रन्थ रत्न Philosophy of Dayananda अब अति शीघ्र हिन्दी में उपलब्ध होगा। स्वाध्यायशील आर्य जनता प्रकाशक से और दीपक जी से तो इसके प्रकाशन में विलम्ब के बारे पूछते ही रहते थे। उपाध्याय जी के भक्त इसके लिए इस सेवक पर भी निरन्तर दबाव बनाये रखते थे। इस ग्रन्थ के मर्म तथा विशेषता का शब्दों में वर्णन करने में कोई भी सक्षम नहीं है।

आर्यसमाज के सर्वमान्य नेता पत्रकार शिरोमणि महाशय कृष्ण जी स्वयं लौह लेखनी के धनी थे। आप श्रद्धेय उपाध्याय जी के दार्शनिक सैद्धान्तिक लेखों के बारे यह कहा करते थे कि उपाध्याय जी एक ही विषय पर बीस बार लिखेंगे तो हर बार नये प्रकार से लिखेंगे। उनके एक ही विषय पर लिखे गये हर लेख में कुछ न कुछ मौलिकाता नवीनता मिलेगी। दर्शन की गुत्थियों को सुलझाने में उन्हें जो सिद्धि प्राप्त थी वह विरले ही तत्त्वज्ञानियों में मिलेगी।

प्राय: धर्माचार्य जब अविद्या की चर्चा करते हैं तो वे अविद्या का अर्थ या अविद्या का तात्पर्य ज्ञान का अभाव बताते व समझते हैं। यह एक बहुत बड़ी भ्रान्ति है। नवीन वेदान्ती बड़े-बड़े महात्माओं और आचार्यों ने शिक्षित अशिक्षित सब में यह भ्रम फैल रखा है। गत दिनों कहीं यात्रा में एक ऐसे ही ज्ञानी सन्त के मुख से यह चर्चा सुनकर मेरे से रहा न गया। मैंने कहा, "महाराज! अविद्या का अर्थ ज्ञान का अभाव नहीं इसका अर्थ भ्रान्त ज्ञान अथवा मिथ्या ज्ञान होता है। पूज्य उपाध्याय जी के इसी ग्रन्थ का एक वाक्य उन्हें सुनाया, "Avidya in

Sanskrit does not mean absence of knowledge, but errorneous knowledge."

मेरे मुख से ये शब्द सुनकर वहाँ बैठे श्रोता तो फड़क ही उठे, स्वयं महात्मा जी को भी यह कथन बहुत अच्छा लगा। शङ्कराचार्य जी ने जिसे इन्द्रियों का छल धोखा बताया है ऋषि दयानन्द की दृष्टि में वह इन्द्रियों अथवा मन या आत्मा का रोग है। अपने ग्रन्थ में एक सरल सा उदाहरण देकर उपाध्याय जी इस उलझन को सुलझाते हैं, "We use instrument to do something. If the instrument has any defect the work cannot be done. Or if the worker is wanting in the determination due to any internal causes, even then the work will not be done. Similarly, if one fails to get a correct knowledge through senses, it does not mean that senses as such are deceivers. The sense, may be defective, or the user of these senses may have some inner defect."

अर्थात् हम कुछ करने के लिये यन्त्र का प्रयोग करते हैं। यदि यन्त्र दोषयुक्त है तो कार्य नहीं किया जा सकता अथवा यदि किसी भीतरी कारण से कार्यकर्त्ता में निश्चय की कमी है तो फिर भी कार्य नहीं हो सकेगा। ठीक इसी प्रकार यदि कोई व्यक्ति इन्द्रियों द्वारा ठीक-ठीक ज्ञान प्राप्त नहीं कर पाता तो इसका यह अर्थ नहीं कि इन्द्रियाँ छली कपटी हैं। इन्द्रियों में दोष हो सकता है या फिर इन्द्रियों से कार्य लेने वाले कर्त्ता जीव में कोई भीतरी दोष होगा।

उपाध्याय जी इसी ग्रन्थ में अन्यत्र भी इस प्रश्न का समाधान करते हुए बड़े सरल शब्दों में इसे हृदयङ्गम करवाते हुए लिखते हैं, "Untruth is not the absence of knowledge, but wrong or false knowledge." अर्थात् ज्ञान के अभाव को असत्य नहीं कहना मानना चाहिये। भ्रामक, मिथ्या उलटा ज्ञान अविद्या या असत्य समझना चाहिये।

असत्य में झुक जाना:—इस प्रसंग में आपने ऋषि दयानन्द के अमर ग्रन्थ सत्यार्थप्रकाश की भूमिका के ये शब्द उद्धृत किये हैं, "मनुष्य का आत्मा सत्यासत्य का जानने वाला है, तथापि अपने प्रयोजन की सिद्धि, हठ, दुराग्रह और अविद्यादि दोषों से सत्य को छोड़ असत्य में झुक जाता है।"

महर्षि के ऐसे ही एक कथन को उपाध्याय जी ने अंग्रेजी में ऐसे लिखा है, "To think a thing as it is, is knowledge. To think it otherwise is

ignorance." अर्थात् किसी वस्तु को जैसी है वैसा ही जानना ज्ञान कहलाता है और उसे कुछ और जानना मानना अविद्या है।

जीव पाप क्यों करता है?–मनुष्य के सामने यह कोई नया प्रश्न नहीं है। सब मत पंथों को और नास्तिक विचारकों के सामने भी यह समस्या रही है। मनुष्य अपनी अल्पज्ञता से, प्रयोजन की सिद्धि, हठ, दुराग्रह और अविद्यादि दोषों से असत्य में झुक जाता है–पाप करता है। वैदिक धर्म और दर्शन पाप पुण्य का कर्त्ता मनुष्य को ही मानता है। अन्य मत पंथों में पाप के करवाने वाला बहकाने वाला शैतान को माना जाता है। इस सोच के विरुद्ध इन मतों में भी विद्रोह होता चला आ रहा है। उपाध्याय जी ने सर सैयद की एक पुस्तक का उद्धरण देकर अपने एक ग्रन्थ में ऋषि के उपरोक्त कथन की पुष्टि की है। एक मौलाना को सपने में शैतान दिखाई दिया। मौलाना ने कसकर एक हाथ में उसकी दाढ़ी पकड़कर खींची। शैतान दाढ़ी को छुड़वाने के लिए छट पटाया तो बहुत परन्तु छुड़वा न सका। मौलाना ने अपने दूसरे हाथ से शैतान को इतने जोर का थप्पड़ मारा कि उसका गाल लाल हो गया।

मौलाना ने थप्पड़ जो मारा तो उसकी अपनी नींद खुल गई। उसने देखा कि उसके हाथ में उसकी अपनी ही दाढ़ी थी और थप्पड़ पड़ने से जो गाल लाल-लाल हो गया था वह भी उसका अपना ही था। इस पर सर सैयद ने लिखा है कि वास्तव में शैतान की सत्ता कहीं आपके बाहर नहीं। शैतान तो मनुष्य के भीतर ही है। वेद के शिव सङ्कल्प के मन्त्रों में बार-बार मन को सद्विचारों का मन्दिर बनाने की प्रार्थना की गई है। सर सैयद अहमद खाँ ने वैदिक दर्शन की इस सीख को बड़ी बुद्धिमत्ता से स्वीकार किया है।

पाचन वही शैतानः–प्रसंगवश यहाँ एक रोचक प्रसंग देना पाठकों को बहुत अच्छा लगेगा। पं० लेखराम जी ने लिखा है कि शैतान को पाप करवाने का दोषी मानकर कुछ मतों के लोगों ने शैतान को ***'पाचन वटी'*** समझ रखा है। पाप करते जाते हैं और पाप करके उस पर दुखी व लज्जित नहीं होते। अपना सुधार नहीं करते प्रत्युत पाप का दोष शैतान पर मढ़कर दुष्कर्मों के फल से बचना चाहते हैं।

क्या मैं हूँ?:–भारत में स्वप्नवाद मायावाद के कारण करोड़ों हिन्दुओं के मन में यह विचार घुसा हुआ है कि जीव की कोई सत्ता है ही नहीं। 'मैं' कुछ नहीं हूँ। एकमेव ब्रह्म की ही सत्ता है। इस समस्या का विवेचन पूज्य उपाध्याय जी ने बड़े सरल शब्दों में ऐसे किया है, "Does every child know that he exists.

The Question is not whether he exists. The question is whether he knows that he exists. Philosophers with their minds affected by so many theories of knowledge may find the question difficult to answer. But in the mind of a child or an ignorant and uneducated man the answer is clear. He knows that he is. The knowledge may not be explicit. But doubtless implicit it is."

अर्थात् क्या प्रत्येक बच्चा यह जानता है कि उसकी सत्ता है? प्रश्न यह नहीं है कि क्या वह है। प्रश्न तो यह है कि क्या उसे यह ज्ञान है कि वह है। विभिन्न प्रकार के विचारों मान्यताओं से प्रभावित मस्तिष्कों के कारण दार्शनिकों को इस प्रश्न का उत्तर देने में कठिनाई अनुभव हो सकती है। परन्तु एक बच्चे के अथवा अज्ञानी और अशिक्षित मनुष्य के मस्तिष्क में इसका उत्तर सुस्पष्ट है। वह जानता है कि मैं हूँ। यह ज्ञान सुस्पष्ट व्यक्त भले ही न हो परन्तु निस्सन्देह यह अव्यक्त रूप में है ही। पाठक देख सकते हैं कि कितने शुष्क व दुरुह प्रश्न का कितना सरल उदाहरण देकर समाधान किया गया है।

मुझे याद है कि शोलापुर में मेरा एक विद्यार्थी अलापुरे मुझे मेरे निवास पर मिलते है। उसकी धर्मा चर्चा में रुचि थी ही स्वप्रवाद का प्रभाव उस पर था। मैंने धर्म चर्चा छेड़ दी। प्रश्नोत्तर होने लगा। चीन का आक्रमण हो कर थोड़ा समय बीता था। मैंने कहा, "उत्तर पूर्वी सीमा पर देश की रक्षा कैसे की जा सकती है?"

उसने कहा, "हमें जागरूकता से देश की रक्षा करनी होगी।"

इस पर मैंने उपाध्याय जी की शैली में कहा, "फिर तो देश की रक्षा का सारा भार आर्य समाजियों को उठाना होगा।"

उस मेधावी युवक ने कहा, "नहीं सब देशवासियों को देश-रक्षा के लिये जागरूकता से कर्त्तव्य निभाना होगा।"

मैंने कहा, "आप तो संसार को स्वप्न व मिथ्या मानते हैं। स्वप्न तो सोने वालों को आया करते हैं। आप नींद में स्वप्न लें। हम देश बचाने के लिए जागेंगे।"

यह वाक्य सुनकर वह बोला, "आपने तो आज मुझे फंसा लिया।"

मैंने कहा, "मैंने नहीं फंसाया। आप फंसे पड़े थे। मैंने तो आपको मुक्त करवा लिया है।"

उपाध्याय जी के दयानन्द दर्शन के ऐसे ही तर्क प्रमाण सुनाकर मैं लातूर आर्यसमाज के उत्सव पर बोल रहा था। एक अद्वैतवादी शांकर मत का मानने

वाला युवक मनोहर लाल बड़े ध्यान से मुझे सुन रहा था। उसने मुझे कहा मुझे आर्य समाज की कर्मण्यता, आर्यों की लगन व वीरता खींचती थी परन्तु मैं पक्का मायावादी था। आपने मुझे त्रैतवादी बना दिया।

उपाध्याय जी का तो चिन्तन ही अनूठा है। कई लोग मुक्ति से लौटने के आर्य सिद्धान्त को ऋषि दयानन्द के मस्तिष्क की उपज मानते हैं। पं.गंगाप्रसाद जी ने यह कहकर सबको निरुत्तर व मौन कर दिया, "मुक्ति सत्कर्म का, सद्ज्ञान का फल है। कर्म कितने भी उत्तम हैं फिर भी सीमित ही तो हैं। ससीम कर्मों का फल असीम कैसे? मुक्त रूपी आनन्द को भोग कर लौटना ही तो पड़ेगा। फिर कहा, "जिसका आदि उसका अन्त होगा ही। मुक्ति में जब जाओगे तो वह उसका आदि होगा। क्या इसका अन्त होगा या नहीं?

विकासवाद के दो कथनः—बीसवीं शताब्दी के पहले पच्चास वर्षों में संसार में साम्यवाद, समाजवाद तथा विकासवाद की अँधी-आंधी चलती रही। स्वयं को साम्यवादी और विकासवादी कहना व बताना एक वैचारिक फैशन था। विकासवाद की दो मूल भूत मान्यताओं की हम बहुत दुहाई सुना करते थे।

1. Law of natural selection अर्थात् प्राकृतिक चुनाव।

2. Struggle for existence or survival जीने के लिए संघर्ष।

उपाध्याय जी ने अपनी Vedic Culture आदि पुस्तकों में भी इस पर पठनीय विचार व्यक्त किये हैं। इस उत्तम ग्रन्थ में हम ये विचारणीय पंक्तियाँ पढ़ते हैं, "Natural selection is a dignified name for struggle for existence or survival. The struggle lies in selection, rejecting the unfavourable and letting live the favourable. Natural selection is a struggle. All selection implies struggle, an effort to choose out of two or more things."

अर्थात् प्राकृतिक निर्वाचन का नियम तो जीवन संघर्ष के लिए एक गौरवशाली नाम गढ़ा गया है। जो अनुकूल हो उसे रहने देना, जो प्रतिकूल हो उसे तज देना—इस चुनाव के लिए संघर्ष चलता रहता है। सकल चुनाव में संघर्ष निहित होता है—दो अथवा दो से अधिक विकल्पों में से एक को चुनने का प्रयास करना।

ये बातें तो विकासवाद विषय की चर्चा करते समय हर कोई करता है। उपाध्याय जी की मौलिकता इसमें है कि आपने वैदिक दर्शन की कसौटी पर इसे कसकर कुछ पते की बातें लिखी हैं।

1. विकासवाद में किसी चेतन सत्ता को स्वीकार नहीं किया गया। जीने के

लिए कौन संघर्ष करता है? किसके अस्तित्व तथा जीवन सुरक्षा (Survival) का प्रश्न है?

2. जड़ प्रकृति ज्ञान शून्य है। उसमें इच्छा (Will) तथा ज्ञान दोनों नहीं परन्तु Selection चुनाव तो एक ज्ञानमय (cognitive) प्रक्रिया है। इस प्रकार घुमा फिराकर लच्छेदार शब्दों में विकासवाद जीव तथा उसकी कर्म करने की स्वतन्त्रता दोनों को स्वीकार करता है। वैदिक दर्शन में जीव के लिए यह कहा गया है, चाहे तो करे, चाहे तो न करे और चाहे तो उलट करे। जिसमें ज्ञान होगा, वही चुनाव करेगा। जड़ और चेतन का भेद इसी से पता चल जाता है। मनोविज्ञान में एक बहुत प्रसिद्ध सूक्ति है,"You can take a horse to water but you cannot make him take water." अर्थात् आप घोड़े को जल के पास तो ले जा सकते हो परन्तु आप उसे जल पीने के लिए विवश नहीं कर सकते।

पिता पुत्र दोनों की विलक्षण ऊहाः—परमात्मा ने पं० गंगा प्रसाद जी उपाध्याय तथा उनके पुत्र डॉ० सत्यप्रकाश [स्वामी सत्यप्रकाश] को धर्म दर्शन की गूढ़ से गूढ़ बातों को बहुत सरल व रोचक शब्दों में समझाने की कला दे रखी थी। सुष्पति तथा समाधि पर बहुत कुछ पढ़ने व सुनने का अवसर मिला है। सत्यप्रकाश जी महाराज ने कितने हृदय स्पर्शी शब्दों में दोनों का फल लिखा है, "In sound slumber, the wounds are dressed and in the samadhi, the wounds are healed." अर्थात् सुष्पति में घावों की पट्टी हो जाती है और समाधि में घाव ठीक ठाक हो जाते हैं।

यदि जगत मिथ्या है तो?—भारत में गली-गली जगत मिथ्या की लोरी देने वाले महात्मा घूमते फिरते देखे जाते हैं। और इस मिथ्या झूठ जग के बारे में अनेक प्रश्न पूछ जाते हैं। नये-नये ग्रन्थ इनके समाधान के लिए लिखे जा रहे हैं। उपाध्याय जी इसी ग्रन्थ में एक चुटकी लेते हैं, "If the creation is unreal, then the question about the unreal world are also of no importance." अर्थात् यदि रचना (जगत्) ही मिथ्या है तो फिर इस झूठे संसार विषयक सारे प्रश्न निरर्थक व महत्वहीन हैं।

बिना उपादान कारण केः—आपने एक स्थान पर लिखा है सृष्टि में आपको उपादान कारण के बिना निर्मित किये गये एक भी पदार्थ का कहीं कोई उदाहरण नहीं मिलेगा फिर भी कोई यही रट लगाये कि ऐसा सम्भव है तो उसकी इस सोच के बोझे को दर्शन शास्त्र नहीं ढो सकता।

ऋषि की दर्शन को देन:–आपने बड़े सजीव शब्दों में कभी लिखा था, "He has given us a bold philosophy of life, a philosophy of the reality of God, reality of man and the reality of the universe in which man has to live in. His is a philosophy of bold actions and not of idle musings." अर्थात् महर्षि दयानन्द जी ने हमें एक वीरोचित जीवन दर्शन दिया है, ईश्वर की सत्यता का एक दर्शन, मनुष्य की वास्तविकता का दर्शन और जिस जगत् में मनुष्य को कार्य करना है उस जगत् की सचाई का दर्शन ऋषि ने हमें दिया है। उसका दर्शन साहसिक कार्यों का दर्शन है, यह निरर्थक (बेकार) चिन्तन दर्शन नहीं है।

कर्मफल सिद्धान्त पर लिखा है:–एक नास्तिक भी अपने पुत्र को खोटे कर्म करने पर दण्ड देता है और कहता भी है कि तूने अपराध किया है। तुझे दण्ड मिलेगा। यह भी तो कर्म फल ही है। ऐसे गम्भीर प्रश्नों को उठाकर इतने सरल सुबोध उत्तर देना प्रत्येक व्यक्ति के बस की बात नहीं है।

योनियों का परस्पर सम्बन्ध:–विकासवाद के खण्डन तथा मण्डन में बहुत कुछ लिखा गया परन्तु इसके एक पक्ष पर केवल और केवल उपाध्याय जी ने ही लिखा है और लिखा भी बहुत अनूठे ढंग से। आपने लिखा है पुनर्जन्म के सिद्धान्त को न मानने वाले इसका उपहास उड़ाते हुए कहा करते थे कि क्या हम अगले जन्म में गाय, घोड़ा, उल्लू व गधा भी कभी बन सकते हैं? इस पर उपाध्याय जी ने लिखा है कि विकासवाद के प्रभाव में अब ऐसी सोच वालों ने यह तो मान ही लिया कि योनियों का परस्पर सम्बन्ध है। हम गाय, भैंस, तोता व कुत्ता बन्दर न भी बनें परन्तु हम बन्दर की सन्तान तो अवश्य हैं। इस विचार को पढ़कर इस लेखक को प्रयाग के मुस्लिम विचारक महाकवि अकबर का निम्न पद्य याद आ जाता है:–

डार्विन साहिब हकीकत से नहायत दूर थे।
हम न मानेंगे कि मूरिस आपके लंगूर थे।

अर्थात् डार्विन महादय सचाई से कोसों दूर थे। हम तो यह नहीं मानेंगे कि आपके पूर्वज लंगूर तथा बन्दर थे। अकबर जी ने यह पद्य लिखा इसलिये कि तब प्रत्येक अंग्रेज़ी पठित के मन व मस्तिष्क पर डार्विन के इस विचार की छाप थी कि भिन्न-भिन्न योनियों से विकास करते-करते मनुष्य की उत्पत्ति हुई। आगे फिर यह विकास क्यों रुक गया? मनुष्य के बाद किसी नई योनि का निर्माण क्यों

न हो पाया? इस पर सबने चुप्पी साध ली।

ईश्वरीय ज्ञान विषयक उनका कथनः—महर्षि दयानन्द के दार्शनिक चिन्तन की पुष्टि में आपने जब कभी कुछ लिखा व कहा उससे आपके तलस्पर्शी ज्ञान व गहरी सोच का परिचय मिलता था। आपने लिखा है, "ईश्वरीय ज्ञान सृष्टि के आदि में ही आता है। उसके पश्चात् नहीं। तत्पश्चात् तो मानवीय हस्तक्षेप सम्मिलित हो जाता है।"

एक बार विकासवाद की आड़ में वेद पर वार करने वालों को उन्हीं की बोली में उत्तर दिया। वेद का सद्ज्ञान आज भी मनुष्य समाज को लाभान्वित कर रहा है इससे प्रमाणित हो गया कि योग्यतम उत्कृष्टतम होने से ही वेद आज पर्यन्त हैं अर्थात् survival of the fitest का संकेत करके उन्हें निरुत्तर कर दिया।

एक अंश पाप करे और दूसरा दण्ड देः—जीव को ईश्वर का अंश बताने पर ऋषि के सिद्धान्त की पुष्टि में लिखा, "जीव को ईश्वर का अंश मानना तो ईश्वर को अखण्ड और अखण्डनीय मानने से इनकार करना है। यह दोष ईश्वर पर लागू होगा। ईश्वर का एक अंश पाप करे और दूसरा उसको दण्ड दे? बेटे ने दवात की स्याही फैला दी। बाप ने उसके चाँटा मारा। दोनों ही ईश्वर के अंश थे।"

सुख और सुख के साधनः—लोक में धार्मिक अधार्मिक सब प्रकार के लोगों में सुख और सुख के साधन चर्चा का विषय रहा है और आगे भी रहेगा। ऋषि दयानन्द जी के एतद्विषयक दार्शनिक दृष्टिकोण को जैसे उपाध्याय जी ने हमारे सामने रखा वैसे बहुत कम पढ़ने को मिलेगा। "उद्देश्य और साधन में यह भेद है कि साधन अपना काम करने के पश्चात् हेय हो जाता है। जगत् को दर्शन शास्त्र में हेय इसीलिए कहा है कि काम करके उसको छोड़ देना चाहिए। कोई स्टेशन पर पहुंचकर गाड़ी में बैठा नहीं रहता, न किसी को पेट भरने के पश्चात् खाते रहना चाहिये।"

"...उन चीजों से सुख मिलता अवश्य है, परन्तु विशेष अवस्थाओं में। सुख उनका गुण नहीं है और सुख उनमें इस प्रकार विद्यमान है जैसे आम में रस।.. इसका अर्थ यह है कि उन वस्तुओं को सुख का साधन बताने में हमारा अपना भी बहुत कुछ भाग है। सुख एक साझे की दुकान है।"

"कितने लोग हैं जो संसार की वस्तुओं को सुख का पर्याय समझकर उन्हीं के उपार्जन में लगे रहते हैं। यह मिथ्या ज्ञान है।"

आर्य समाज में भी कुछ वर्ष पूर्व यह भ्रान्त विचार फैलाने का यत्न किया

गया कि सुख दु:ख प्रकृति का गुण है। पूज्य उपाध्यायजी ने विद्वानों तथा जन साधारण के कल्याणार्थ इसे अपनी अनूठी शैली में हमारे सामने रखा है। सच्च बात तो यह है कि महर्षि दयानन्द दर्शन को समझने के लिए उपाध्याय जी को समझना पढ़ना आवश्यक है। क्या-क्या छोड़ें और क्या-क्या यहाँ दें। मेरा मन भी नहीं भरता।

विस्मृति न होती तो:–"कितनी वस्तुएँ हैं जिनके भूलने में ही हमारा कल्याण है।"

आवागमन का अनादि सिद्धान्त:–आवागमन का सिद्धान्त विश्वव्यापी और प्राचीनतम है। आपने एक लेखक को उद्धृत करते हुए लिखा है, A learned English churchman has declared it to be fatherless, motherless and without geneology." एक अंग्रेज़ पादरी की यह घोषणा है कि आवागमन के विश्वास के माता पिता व पूर्वजों का कोई अता पता नहीं। यह कभी भूमण्डल का सर्वमान्य सिद्धान्त था।

शेष फिर कभी

ओ३म्

श्रद्धेय आचार्य उदयवीर जी का पाण्डित्य स्वामी वेदानन्द जी की दृष्टि में

–राजेन्द्र 'जिज्ञासु'
वेद सदन, अबोहर-१५२११६

पूज्य आचार्य उदयवीर जी पर मेरा खोजपूर्ण ग्रन्थ **'सतत साधना'** इस समय प्रैस में है। आचार्य जी की साहित्य साधना का सर्वाधिक श्रेय पूज्यपाद स्वामी वेदानन्द जी महाराज को ही जाता है। आचार्य जी पर कार्य करते हुए उनके साहित्य पर महाविद्वान् स्वामी वेदानन्द जी की सम्मति मैं खोज न सका। ग्रन्थ प्रैस मैं पहुँचा तो यह भी मेरे हाथ लग गई। आश्चर्य का विषय तो यह है कि यह महत्त्वपूर्ण सम्मति मेरे सामने मेरी मेज पर एक फाईल में पड़ी थी। इसी को कहते हैं **"तिनके की ओट में पहाड़ छिपा था।"**

गुणी विद्वान् जानते हैं कि आचार्य जी की विद्वत्ता तथा प्रतिभा की धूम उनके अपूर्व ग्रन्थ **'सांख्य दर्शन का इतिहास'** के प्रकाशन से मची थी। इस ग्रन्थ के निर्माण की प्रेरणा स्वामी वेदानन्द जी ने लेखक को दी थी।

स्वामी वेदानन्द जी की प्रबल प्रेरणा से ही श्री आचार्य उदयवीर अपनी

बहुमूल्य उर्वरा भूमि-सकल वैभव पर लात मार कर लाहौर के लिए चल पड़े। यह ग्रन्थ लिखा गया तो देश की हत्या कर दी गई। ग्रन्थ की पाण्डुलिपि लाहौर रह गई। यह स्वामी वेदानन्द जी थे जिन्होंने इस शोध पूर्ण गम्भीर ग्रन्थ को फिर से लिखने का कठिन कार्य करवा लिया। इस अपूर्व ग्रन्थ पर स्वामी जी की सम्मति का सार इस प्रकार से है:-

१. काल कराल की चाल देखिये कि आज के पाश्चात्य विद्वान् तथा उनके भारतीय चेले सांख्य के कर्त्ता कपिल ऋषि की सत्ता से ही इनकार करते हैं। इस विशालकाय ग्रन्थ में युक्ति प्रमाणों से सिद्ध किया गया है कि कपिल जी काल्पनिक नहीं वास्तविक व्यक्ति हुए हैं। सांख्य दर्शन जाल ग्रन्थ नहीं प्रत्युत आदि विद्वान् कपिल की ही रचना है।

2. गम्भीर खोज करके सांख्य के नये सम्प्रदाय के प्रवर्त्तक ईश्वर कृष्ण से पहले के साहित्य से वर्त्तमान सांख्य दशर्न के उद्धरण दिखाकर इस दर्शन की अति प्राचीनता प्रमाणित की गई है।

3. सांख्य दर्शन के इतिहास सम्बन्धी कोई विषय नहीं जिसका इस ग्रन्थ में विवेचन न किया गया हो।

4. महर्षि कपिल के अतिरिक्त पच्चास सांख्याचार्यों का यथा प्राप्त इतिहास इस ग्रन्थ में दिया गया है।

5. सांख्य दर्शन विषयक ऐसा कोई भी ग्रन्थ किसी भी भाषा में नहीं मिलेगा।

5. पाश्चात्य पद्धति के विद्वान् भी इसकी प्रशंसा कर रहे हैं।

सनातन धर्म जगत् के शिरोमणि विद्वान् पं० गिरधर शर्मा जी जिन्होंने कभी उदयवीर जी की विद्वत्ता का उपहास उड़ाते हुए लाहौर में उन पर व्यंग्य बाण छोड़े थे आपने खुलकर कहा कि सांख्य पर (कपिल ऋषि पर) नास्तिकता कलङ्क पं० उदयवीर शास्त्री ने धो दिया।

आचार्य जी आत्म विश्वास से भरपूर हृदय से अपने ग्रन्थों की गरिमा का संकेत करते रहे परन्तु अपने ग्रन्थों की मौलिकता पर स्वयं कुछ लिखने से बचते रहे। उनके जीवन की एक घटना से उनके ग्रन्थों के बारे में उनका निज मत हमारे सामने आता है।

आचार्य उदयवीर जी की तीन पुत्रियाँ हैं। कोई पुत्र नहीं जनमा। मित्र बन्धु, हितैषी और सगे सम्बन्धी यह चाहते व कहते थे कि वंश को चलाने के लिए एक पुत्र भी होना चाहिये। वंश तो पुत्र से ही आगे चलता है।

गम्भीर विद्वान् वेद-रत्न आचार्य उदयवीर जी ने इस प्रश्न के उठाय जाने पर

कभी कहा था:–

"हमारा वंश ग्रन्थों से चलेगा"

आचार्य उदयवीर जी ने अपने दर्शन ग्रन्थों के भाष्य को "विद्योदय भाष्य" नाम दिया। बड़े-बड़े विद्वान् भी इस नामकरण को ना समझ पाये। अपवाद तो अवश्य है। विद्या+उदय = विद्योदय होता है। **'विद्या'** आचार्य जी की जीवन सङ्गिनी का नाम था **'उदय'** आचार्य जी का नाम था। **'विद्योदय'** नाम का एक संस्कृत मासिक आचार्य जी को प्रिय लगता था। उसका संस्कार तो मन पर था ही परन्तु **'विद्योदय भाष्य'**–इस नाम का वास्तविक मर्म और कारण हमने आज यहाँ सार्वजनिक कर दिया है। यह कोई नई परम्परा नहीं। भारत में पहले भी विचारक अपने ग्रन्थों के ऐसे नाम रखा करते थे। आर्य समाज के महामनीषी आचार्य प्रवर उदयवीर जी ने अपने दर्शन ग्रन्थों को **'विद्योदय'** नाम देकर नारी जाति तथा आर्य समाज दोनों को विश्व-इतिहास में गौरवान्वित कर दिया है। महिलायें क्या आचार्य जी के इस उपकार को जानेंगी? मानेंगी? पहचानेंगी? आर्य समाज इस तथ्य को संसार के सामने लायेगा?

ओ३म्

'महर्षि दयानन्द और आर्य समाज का हिन्दी के प्रचार प्रसार में योगदान'

–मनमोहन कुमार आर्य

पता: 196 चुक्खूवाला ब्लाक-2 देहरादून-248001

भारतवर्ष के इतिहास में महर्षि दयानन्द पहले व्यक्ति हैं जिन्होंने अहिन्दी भाषी (गुजराती) होते हुए भी पराधीन भारत में सबसे पहले राष्ट्रीय एकता एवं अखण्डता के लिए हिन्दी को सर्वाधिक महत्वपूर्ण जानकर मन, वचन व कर्म से इसका प्रचार-प्रसार किया। उनके प्रयासों का ही परिणाम था कि हिन्दी, जिसे स्वामी दयानन्द जी ने आर्यभाषा का नाम दिया, शीघ्र लोकप्रिय हो गई। स्वतन्त्र भारत में संविधान सभा द्वारा 14 सितम्बर 1947 को सर्वसम्मति से हिन्दी को राजभाषा स्वीकार किया जाना भी स्वामी दयानन्द के इससे 77 वर्ष पूर्व आरम्भ किए गये कार्यों का ही सुपरिणाम था।

प्रसिद्ध हिन्दी साहित्यकार विष्णु प्रभाकर हमारे राष्ट्रीय जीवन के अनेक पहलुओं पर स्वामी दयानन्द का अक्षुण प्रभाव स्वीकार करते हैं और हिन्दी पर साम्राज्यवादी होने के आरोपों को अस्वीकार करते हुए कहते हैं कि यदि साम्राज्यवाद शब्द का हिन्दी वालों पर कुछ प्रभाव है भी, तो उसका सारा दोष

अहिन्दी भाषियों का है। इन अहिन्दीभाषियों का अग्रणी वह स्वामी दयानन्द को मानते हैं और लिखते हैं कि इसके लिए उन्हें प्रेरित भी किसी हिन्दी भाषी ने नहीं अपितु एक बंगाली सज्जन श्री केशवचन्द्र सेन ने किया था।

स्वामी दयानन्द का जन्म 14 फरवरी, 1825 को गुजरात राज्य के राजकोट जनपद में होने के कारण गुजराती उनकी स्वाभाविक रूप से मातृभाषा थी। उनका अध्ययन-अध्यापन संस्कृत में हुआ। इसी कारण वह संस्कृत में ही वार्तालाप, व्याख्यान, लेखन, शास्त्रार्थ, शंका-समाधान आदि किया करते थे। 16 दिसम्बर, 1872 को स्वामीजी वैदिक मान्यताओं के प्रचारार्थ भारत की तत्कालीन राजधानी कलकत्ता पहुंचे थे और वहां उन्होंने अनेक सभाओं में व्याख्यान दिये। ऐसी ही एक सभा में स्वामी दयानन्द के संस्कृत भाषण का बंगला में अनुवाद गवर्नमेन्ट संस्कृत कॉलेज, कलकत्ता के उपाचार्य पं. महेशचन्द्र न्यायरत्न कर रहे थे। दुभाषिये वा अनुवादक का धर्म वक्ता के आशय को स्पष्ट करना होता है परन्तु श्री न्यायरत्न महाशय ने स्वामी जी के वक्तव्य को अनेक स्थानों पर व्याख्यान को अनुदित न कर अपनी उनसे विपरीत मान्यताओं को सम्मिलित कर वक्ता के आशय के विपरीत प्रकट किया जिससे व्याख्यान में उपस्थित संस्कृत कॉलेज के छात्रों ने उनका विरोध किया। विरोध के कारण श्री न्यायरत्न बीच में ही सभा छोड़कर चले गये थे। प्रसिद्ध ब्रह्मसमाजी नेता श्री केशवचन्द्र सेन भी इस सभा में उपस्थित थे। **बाद में इस घटना का विवेचन कर उन्होंने स्वामी जी को सुझाव दिया कि वह संस्कृत के स्थान पर लोकभाषा हिन्दी को अपनायें।** गुण ग्राहक स्वाभाव वाले स्वामी दयानन्द जी ने तत्काल यह सुझाव स्वीकार कर लिया। यह दिन हिन्दी के इतिहास की एक प्रमुख घटना थी कि जब एक 48 वर्षीय गुजराती मातृभाषा के संस्कृत के अद्वितीय विद्वान ने हिन्दी को अपना लिया। ऐसा दूसरा उदाहरण इतिहास में अनुपलब्ध है। इसके पश्चात स्वामी दयानन्द जी ने जो प्रवचन किए उनमें वह हिन्दी का ही प्रयोग करने लगे।

सत्यार्थ प्रकाश स्वामीजी की प्रसिद्ध रचना है जो देश-विदेश में विगत 139 वर्षों से उत्सुकता एवं श्रद्धा से पढ़ी जाती है। फरवरी, 1872 में हिन्दी को स्वीकार करने के लगभग 2 वर्ष पश्चात ही स्वामीजी ने 2 जून 1874 को उदयपुर में इसका प्रणयन आरम्भ किया और लगभग 3 महीनों में पूरा कर डाला। श्री विष्णु प्रभाकर इतने अल्प समय में स्वामीजी द्वारा हिन्दी में सत्यार्थ प्रकाश जैसा उच्च कोटि का ग्रन्थ लिखने पर इसे आश्चर्यजनक घटना मानते हैं। सत्यार्थ प्रकाश के पश्चात वेदों एवं वैदिक सिद्धान्तों के प्रचारार्थ स्वामीजी ने अनेक ग्रन्थ लिखे जो सभी हिन्दी में हैं। उनके ग्रन्थ उनके जीवनकाल में ही देश की सीमा पार कर विदेशों में भी लोकप्रिय हुए। विश्वविख्यात विद्वान् प्रो. मैक्समूलर ने

स्वामी दयानन्द की पुस्तक ऋग्वेदादिभाष्य भूमिका पढ़कर अपनी प्रतिक्रिया व्यक्त करते हुए लिखा कि वैदिक साहित्य का आरम्भ ऋग्वेद से एवं अन्त स्वामी दयानन्द जी की ऋग्वेदादिभाष्य भूमिका पर होता है। स्वामी दयानन्द के सत्यार्थ प्रकाश एवं अन्य ग्रन्थों को इस बात का गौरव प्राप्त है कि धर्म, दर्शन एवं संस्कृति जैसे क्लिष्ट विषय को सर्वप्रथम उनके द्वारा हिन्दी में प्रस्तुत कर उसे सर्वजनसुलभ किया जबकि इससे पूर्व इस पर संस्कृत निष्णात ब्राह्मण वर्ग का ही अधिकार था जिसने इन्हें संकीर्ण एवं संकुचित कर दिया था। **यह उल्लेखनीय है कि ऋग्वेदादिभाष्य भूमिका संस्कृत व हिन्दी दोनों भाषाओं में है। दोनों भाषाओं के देवनागरी लिपि में होने के कारण प्रो. मैक्समूलर व इस ग्रन्थ के अन्य पाठकों व विद्वानों का हिन्दी से परिचय हो गया था। हिन्दीतर संस्कृत विद्वानों को हिन्दी से परिचित कराने हेतु स्वामी दयानन्द जी की यह अनोखी सूझ महत्वपूर्ण एवं अनुकरणीय है। इसी पद्धति को उन्होंने अपने वेद भाष्य में भी अपनाया है।**

थियोसोफिकल सोसायटी की नेत्री मैडम ब्लैवेटेस्की ने स्वामी दयानन्द से उनके ग्रन्थों के अंग्रेजी अनुवाद की अनुमति मांगी तो स्वामी दयानन्द जी ने 31 जुलाई 1879 को विस्तृत पत्र लिख कर उन्हें अंग्रेजी अनुवाद से हिन्दी के प्रचार-प्रसार एवं प्रगति में आने वाली बाधाओं से परिचित कराया। स्वामी जी ने लिखा कि अंग्रेजी अनुवाद सुलभ होने पर देश-विदेश में जो लोग उनके ग्रन्थों को समझने के लिए संस्कृत व हिन्दी का अध्ययन कर रहे हैं, वह समाप्त हो जायेगा। **हिन्दी के इतिहास में शायद कोई विरला ही व्यक्ति होगा जिसने अपनी हिन्दी पुस्तकों का अनुवाद इसलिए नहीं होने दिया जिससे अनुदित पुस्तक के पाठक हिन्दी सीखने से विरत होकर हिन्दी प्रसार में बाधक हो सकते थे।**

हरिद्वार में एक बार व्याख्यान देते समय पंजाब के एक श्रद्धालु भक्त द्वारा स्वामीजी से उनकी पुस्तकों का उर्दू में अनुवाद कराने की प्रार्थना करने पर उन्होंने आवेशपूर्ण शब्दों में कहा था कि **अनुवाद तो विदेशियों के लिए हुआ करता है।** देवनागरी के अक्षर सरल होने से थोड़े ही दिनों में सीखे जा सकते हैं। हिन्दी भाषा भी सरल होने से आसानी से कुछ ही समय में सीखी जा सकती है। हिन्दी न जानने वाले एवं इसे सीखने का प्रयत्न न करने वालों से उन्होंने पूछा कि **जो व्यक्ति इस देश में उत्पन्न होकर यहां की भाषा हिन्दी को सीखने में परिश्रम नहीं करता उससे और क्या आशा की जा सकती है?** श्रोताओं को सम्बोधित कर उन्होंने आगे कहा, **''आप तो मुझे अनुवाद की सम्मति देते हैं परन्तु दयानन्द के नेत्र वह दिन देखना चाहते हैं जब कश्मीर से कन्याकुमारी और अटक से कटक तक देवनागरी अक्षरों का प्रचार होगा।'' इस स्वर्णिम**

स्वप्न के द्रष्टा स्वामी दयानन्द ने अपने ग्रन्थों में एक स्थान पर लिखा कि आर्यावर्त (भारत का प्राचीन नाम) भर में भाषा के एक्य सम्पादन करने के लिए ही उन्होंने अपने सभी ग्रन्थों को आर्य भाषा (हिन्दी) में लिखा एवं प्रकाशित किया है। अनुवाद के संबंध में अपने हृदय में हिन्दी के प्रति सम्पूर्ण प्रेम को प्रकट करते हुए वह लिखते हैं, **''जिन्हें सचमुच मेरे भावों को जानने की इच्छा होगी, वह इस आर्यभाषा को सीखना अपना कर्तव्य समझेंगे।''** यही नहीं **आर्य समाज के प्रत्येक सदस्य के लिए उन्होंने हिन्दी सीखना अनिवार्य किया था। भारतवर्ष की तत्कालीन अन्य संस्थाओं में हम ऐसी कोई संस्था नहीं पाते जहां एकमात्र हिन्दी के प्रयोग की बाध्यता रही हो।**

सन् 1882 में ब्रिटिश सरकार ने डा. हण्टर की अध्यक्षता में एक कमीशन की स्थापना कर इससे राजकार्य के लिए उपयुक्त भाषा की सिफारिश करने को कहा। यह आयोग हण्टर कमीशन के नाम से जाना गया। यद्यपि उन दिनों सरकारी कामकाज में उर्दू-फारसी एवं अंग्रेजी का प्रयोग होता था परन्तु स्वामी दयानन्द के सन् 1872 से 1882 तक व्याख्यानों, पुस्तकों वा ग्रन्थों, शास्त्रार्थों तथा आर्य समाजों द्वारा मौखिक प्रचार एवं उसके अनुयायियों की हिन्दी निष्ठा से हिन्दी भी सर्वत्र लोकप्रिय हो गई थी। इस हण्टर कमीशन के माध्यम से हिन्दी को राजभाषा का स्थान दिलाने के लिए स्वामी जी ने देश की सभी आर्य समाजों को पत्र लिखकर बड़ी संख्या में हस्ताक्षरयुक्त ज्ञापन भेजने की प्रेरणा की और जहां से ज्ञापन नहीं भेजे गये उन्हें स्मरण पत्र भेज कर सावधान किया। आर्य समाज फर्रूखाबाद के स्तम्भ बाबू दुर्गादास को भेजे पत्र में स्वामी जी ने लिखा, **''यह काम एक के करने का नहीं है और चूक (भूल-चूक) होने पर वह अवसर पुनः आना दुर्लभ है। जो यह कार्य सिद्ध हुआ (अर्थात् हिन्दी राजभाषा बना दी गई) तो आशा है कि मुख्य सुधार की नींव पड़ जायेगी।''** स्वामीजी की प्रेरणा के परिणामस्वरूप आर्य समाजों द्वारा देश के कोने-कोने से आयोग को बड़ी संख्या में लोगों के हस्ताक्षर कराकर ज्ञापन भेजे गए। **कानपुर से हण्टर कमीशन को दो सौ मैमोरियल भेजे गए जिन पर दो लाख लोगों ने हिन्दी को राजभाषा बनाने के पक्ष में हस्ताक्षर किए थे। हिन्दी को गौरव प्रदान करने के लिए स्वामी दयानन्द द्वारा किया गया यह कार्य भी इतिहास में अन्यतम घटना है।** हमें इस सन्दर्भ में दु:ख के साथ कहना पड़ रहा है कि हिन्दी के विद्वानों ने स्वामी दयानन्द के इस योगदान की जाने अनजाने घोर उपेक्षा की है। हमें इसमें उनके पक्षपातपूर्ण व्यवहार की गन्ध आती है। स्वामी दयानन्द की प्रेरणा से अनेक लोगों ने हिन्दी सीखी। इन प्रमुख लोगों में जहां अनेक रियासतों के राजपरिवारों के सदस्य हैं वहीं कर्नल एच.एस. आल्काट आदि

विदेशी महानुभाव भी हैं जो इंग्लैण्ड में स्वामी जी की प्रशंसा सुनकर उनसे मिलने भारत आये थे। यहां यह भी उल्लेखनीय है कि शाहपुरा, उदयपुर, जोधपुर आदि अनेक स्वतन्त्र रियासतों के महाराजा स्वामी दयानन्द के अनुयायी थे और स्वामी जी की प्रेरणा पर उन्होंने अपनी रियासतों में हिन्दी को राजभाषा का दर्जा दिया था।

स्वामी दयानन्द संस्कृत व हिन्दी के अतिरिक्त अन्य भाषाओं का भी आदर करते थे। उन्होंने सत्यार्थ प्रकाश में लिखा है कि **जब पुत्र-पुत्रियों की आयु पांच वर्ष हो जाये तो उन्हें देवनागरी अक्षरों का अभ्यास करायें, अन्यदेशीय भाषाओं के अक्षरों का भी।** स्वामीजी अन्य प्रादेशिक भाषाओं को हिन्दी व संस्कृत की भांति देवनागरी लिपि में लिखे जाने के समर्थक थे जो राष्ट्रीय एकता की पूरक है। अपने जीवनकाल में हिन्दी पत्रकारिता को भी आपने नई दिशा दी। आर्य दर्पण (शाहजहांपुर : 1878), आर्य समाचार (मेरठ : 1878), भारत सुदश प्रवर्तक (फर्रूखाबाद : 1879), देश हितैशी (अजमेर : 1882) आदि अनेक हिन्दी पत्र आपकी प्रेरणा से प्रकाशित हुए एवं पत्रों की संख्या में उत्तरोत्तर वृद्धि) होती गई।

स्वामी दयानन्द ने हिन्दी में जो पत्र व्यवहार किया वह भी संख्या की दृष्टि से किसी एक व्यक्ति द्वारा किए गए पत्र व्यवहार में सर्वाधिक है। स्वामीजी के पत्र व्यवहार की खोज, उनकी उपलब्धि एवं सम्पादन कार्य में स्वामी श्रद्धानन्द, प्रसिद्ध वैदिक रिसर्च स्कालर पं. भवतद्दत्त, पं. युधिष्ठिर मीमांसक एवं श्री मामचन्द जी का विशेष योगदान रहा है। सम्प्रति स्वामीजी का समस्त पत्र व्यवहार चार खण्डों में पं. यधिष्ठिर मीमांसक के सम्पादन में प्रकाशित है जो रामलाल कपूर ट्रस्ट, रेवली, सोनीपत-हरयाणा से उपलब्ध है। **स्वामी दयानन्द इतिहास में पहले व्यक्ति हैं जिन्होंने अहिन्दी भाषी होते हुए सर्वप्रथम अपनी आत्म-कथा हिन्दीं मे लिखी।** सृष्टि के आरम्भ में सृष्टि के उत्पत्तिकर्ता ईश्वर से वेदों की उत्पत्ति हुई थी। **स्वामी दयानन्द के समय तक वेदों का भाष्य-व्याख्यायें-प्रवचन-लेखन व शास्त्रार्थ आदि संस्कृत में ही होता आया था। स्वामीजी पहले व्यक्ति थे जिन्होंने वेदों का भाष्य संस्कृत के साथ-साथ जन-सामान्य की भाषा हिन्दी में भी करके सृष्टि के आरम्भ से जारी पद्धति को बदल दिया।** न केवल वेदों का भाष्य अपितु अपने सभी सत्यार्थप्रकाश, ऋग्वेदादिभाष्य भूमिका, संस्कार विधि, आर्याभिविनय, व्यवहार भानु आदि ग्रन्थ हिन्दी में लिखे जो धार्मिक जगत के इतिहास की अन्यतम घटना है। हमें लगता कि देश के सभी राजनैतिक दलों एवं विद्वानों ने स्वामी दयानन्द के प्रति घोर पक्षपात का रवैया अपनाया है जिससे उनका पक्षपातरहित न्यायपूर्ण मूल्यांकन

आज तक नहीं हो सका। प्राचीनतम धार्मिक साहित्य से सम्बन्धित यह घटना जहां वैदिक धर्म व संस्कृति की रक्षा से जुड़ी है वहीं भारत की एकता व अखण्डता से भी जुड़ी है। न केवल वेदों का ही अभूतपूर्व, सर्वोत्तम, सत्य व व्यवहारिक भाष्य उन्होंने हिन्दी में किया है अपितु मनुस्मृति एवं अन्य शास्त्रीय ग्रन्थों का अपनी पुस्तकों में उल्लेख करते समय उनके उद्धरणों के हिन्दी में अर्थ भी किए हैं। स्वामी दयानन्द के साथ ही उनके द्वारा स्थापित आर्य समाज एवं उनके अनुयायियों द्वारा स्थापित गुरुकुलों, डी.ए.वी. कालोजों, आश्रमों आदि द्वारा भी हिन्दी के प्रचार-प्रसार में उल्लेखनीय कार्य किया गया है। गुरुकुल कांगड़ी, हरिद्वार में देश में सर्वप्रथम विज्ञान, गणित सहित सभी विषयों की पुस्तकें हिन्दी में तैयार करायीं एवं उनका सफल अध्यापन हिन्दी माध्यम से किया। **इस्लाम मजहब की पुस्तक कुरआन को प्रमाणिकता के साथ हिन्दी में सबसे पहले अनुदित कराने का श्रेय भी स्वामी दयानन्द जी को है।** इसका प्रकाशन भी किया जा सकता था परन्तु किन्हीं कारणों से यह कार्य नहीं हो सका। यह अनुदित ग्रन्थ उनकी उत्तराधिकारिणी परोपकारिणी सभा के पुस्तकालय में आज भी सुरक्षित है।

ऋग्वेदादिभाष्य भूमिका ग्रन्थ में स्वामी दयानन्द जी ने लिखा है कि जो व्यक्ति जिस देश की भाषा को पढ़ता है उसको उसी का संस्कार होता है। अंग्रेजी या अन्यदेशीय भाषा पढ़ा व्यक्ति सत्य, ज्ञान व विज्ञान पर आधारित विश्व वरणीय वैदिक संस्कृति से सर्वथा दूर देखा जाता है। इसके अतिरिक्त वह पश्चात्य एवं अन्य वाममार्गी आदि जीवन शैलियों की ओर उन्मुख देखा जाता है जबकि इनमें मानवीय संवेदनाओं व मर्यादाओं का अभाव देखा जाता है। इसका उदाहरण इनमें पशुओं के प्रति दया भाव के स्थान पर उन्हें मारकर उनके मांस को भोजन में सम्मिलित किया गया है जो कि भारतीय वैदिक धार्म व संस्कृति के विरूद्ध है। अत: स्वामी जी का यह निष्कर्ष भी उचित है कि हिन्दी व संस्कृत के स्थान पर अन्य देशीय भाषाओं को पढ़ने से मनुष्य वैदिक संस्कारों के स्थान पर उन-उन देशों के संस्कारों से प्रभावित होता है।

एक षडयन्त्र के अन्तर्गत विष देकर दीपावली सन् 1883 के दिन स्वामी दयानन्द की जीवनलीला समाप्त कर दी गई। यदि स्वामीजी कुछ वर्ष और जीवित रहे होते तो हिन्दी को और अधिक समृद्ध करते और इसका व्यापक प्रचार करते। इससे हिन्दी भाषा का वर्तमान स्वरूप व विस्तार आज से कहीं अधिक उन्नत, सरल व सुबोध होता। लेख को निम्न पंक्तियों से विराम देते हैं:

''कलम आज तू स्वामी दयानन्द की जय बोल हिन्दी प्रेमी रत्न वह कैसे थे अनमोल।''

फरवरी 2014 में प्रकाशित उपयोगी साहित्य

ऋषि दयानन्द के भक्त, प्रशंसक और सत्संगी
डॉ. भवानीलाल भारतीय **रु. 95.00**

प्रस्तुत ग्रन्थ में लेखक ने ऐसे 50 व्यक्तियों के जीवनवृत तथा स्वामी दयानन्द से इनके पारस्परिक सम्बन्धों की विवेचना की है जो भक्त, प्रशंसक तथा सत्संगी इन तीन वर्गों में परिगणित किये जा सकते हैं।

OM The Symbol of God by Sh. J.M. Mehta **Rs. 60.00**

In this small book, an attempt has been made to describe briefly, various aspects of OM. These inter-alia include its meanings, the origin, its common usage and description in various holy scriptures and its linkage with other faiths etc. Some methods of meditation and Om JAPA are also stated.

Children's Quest by Madan Raheja **Rs. 60.00**

Children accept the beliefs what we teach them in their childhood and they follow the same beliefs life long. It's our duty to teach them properly about our Indian culture and ancient religious beliefs.

The Essence of Satyarth Prakash by J.M. Mehta **Rs. 60.00**

This work can be trated as a comprehensive introduction. It is suggested that after reading this book, the reader should go to the original work of Swami Dayanand for full benefit and appreciation of the light brought out by him from the Vedas and the later scriptures.

Swami Dayanand Saraswati In the Eyes of Some Distinguished Scholars Edited by Dr. Vivek Arya **Rs. 75.00**

This book is a collection of views of few among those distinguished scholars and fans of Swami Dayanand Saraswati, who published their views on the asupicious occasion of Birth Century year of Swamiji.

महर्षि दयानन्द की ज़रूरत क्यों? डॉ. अजय आर्य **रु. 50.00**

व्यवहारिक धरातल पर वैदिक सिद्धान्तों की गवेषणा। ऋषि दयानन्द के विचारों की आधुनिक युग में प्रासंगिकता को समझने के लिए डॉ. अजय आर्य के विचार महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाएंगे।

वैदिक सिद्धान्तों पर सहेलियों की वार्ता पं. सुरेशचन्द्र वेदालंकार **रु. 25.00**

इस पुस्तक का यही उद्देश्य है कि यदि वैदिक सिद्धान्त हमारे मस्तिष्क में बैठ जाएँ तो हम वैदिक और अवैदिक सिद्धान्तों में अन्तर को समझने में समर्थ होंगे और इनके प्रचार-प्रसार द्वारा ही हमारे सभी कष्ट दूर हो सकते हैं।

ikfIr LFkku% fot;dekj xkfoUnjke gklkuUn
4408] ubl lMd] fnYyh&6] njHkk"k 23977216] 65360255
Email: ajayarya16@gmail.com Web: www.vedicbooks.com

सितम्बर२०१४ Registered with Regn. of News Paper for India
वेदप्रकाश R.No. 627/57 Regd. No. DL(DG)-11/8030/2012-14, U(DGO) 01/2013-14 15.07.2013

अक्टूबर 2014 में प्रकाशित होने वाला महत्वपूर्ण साहित्य

ऋषि दयानन्द का तत्त्व-दर्शन पं. गंगाप्रसाद उपाध्याय
अनुवादक **डॉ रूपचन्द्र 'दीपक'**

पं० गंगाप्रसाद उपाध्याय लिखित 'Philosophy of Dayanand' का हिन्दी अनुवाद। यह ग्रन्थ निराला है। इसकी शैली भी निराली है। सम्पूर्ण आर्य साहित्य में हमारे किसी भी दार्शनिक साहित्यकार ने इतनी सहज, सरल तथा स्वाभाविक युक्तियों से वैदिक सिद्धान्तों का मण्डन नहीं किया जो आपको इस ग्रन्थ में मिलेगा। उपाध्याय जी की कुछ विषयों पर मौलिक व्याख्याएँ अत्यन्त हृदय-स्पर्शी हैं जैसे–मायावाद, स्वप्नवाद, जगत् मिथ्या, जड़पूजा, जातिवाद, मनुष्य पूजा, अंध विश्वास, पाप-पुण्य, अद्वैतवाद, वर्ण व्यवस्था ईश्वर की सत्ता, पितृ यज्ञ, राजधर्म, अवतारवाद, प्रकृति आदि। इन सब सिद्धान्तों पर उपाध्याय जी की लेखनी का लोहा सबने माना है।

दृष्टान्त समुच्चय श्री शिवशर्मा 'उपदेशक'

दृष्टान्त कठिन से कठिन विषय को भी किसी भी जिज्ञासु को बहुत सरलता से समझा देता है। इस पुस्तक में कोई व्यर्थ हंसी दिल्लगी या समय खोने के दृष्टान्त नहीं हैं, बड़े-बड़े विद्वानों द्वारा प्राप्त इन रत्नों को देख और पढ़कर आपको अवश्य ही आनंद प्राप्त होगा और श्रेष्ठ जीवन जीने की प्रेरणा मिलेगी।

The Sanskar Vidhi by Swami Dayanand
English Translation by Dr. Satya Prakash Beegoo (Mauritius)

Ceremonial rites and rituals occupy a place of most importance in the life of a devout Hindu. Present book provides simple and adequate knowledge of different sanskaras of Vedic traditions. This Scholarly work envisage how sacraments have the power to purify and enlighten us from within.

वेद के पाठक सावधान! शिवनारायण सिंह गौतम

विश्वविद्यालयों में पढ़ायी जाने वाली पुस्तकों में वेद एवं वेद संबंधी अनेक भ्रान्तिमूलक विषयों को सम्मिलित किया गया है जो कि सत्य से बहुत दूर हैं। ऐसी ही कुछ गलत धारणाओं तथा कुछ पाश्चात्य एवं भारतीय लेखकों व इतिहासकारों द्वारा वेदों पर किये गये आक्षेपों का समाधान इस पुस्तक में प्रस्तुत किया गया है।

प्रकाशक-अजयकुमार, मुद्रक-अजयकुमार, स्वामी-अजयकुमार, गोविन्दराम हासानन्द, 4408, नई सड़क, दिल्ली-6, अजयकुमार द्वारा सम्पादित, प्रिंटर्स-अजय प्रिंटर्स, 1586/C-13, नवीन शाहदरा, दिल्ली-32 में प्रिंट करा, वेदप्रकाश कार्यालय, 4408, नई सड़क, दिल्ली-6 से प्रसारित किया। न्यायक्षेत्र-दिल्ली।